भारतीय कथा-परम्परा की जड़ों को मजबूत करतीं शिव नारायण सिंह की बोधकथाएँ

अरुणा कुमारी
शोधार्थी
बोधकथा शोध संस्थान
शिवलोक, गोरखपुर उ.प्र.

प्रस्तावना —भारतीय कथा परम्परा अत्यन्त प्राचीन और समृद्धशाली रही है। यह कथा परम्परा वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत और पुराणों से प्रवाहित होकर आज के आधुनिक साहित्य तक विद्यमान है। यह परम्परा ज्ञान, नीति, नैतिकता, मानवीयता को रोचक बोधकथाओं के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित करती रहती है। इसके अन्तर्गत लोक जीवन, लोक संस्कृति और लोक गाथाएँ प्रमुख हैं।

भारतीय साहित्य में गद्य साहित्य, कथा साहित्य और आख्यान साहित्य का विस्तृत वर्णन मिलता है, जो सामाजिक टिप्पणी और मानवीय भावनाओं पर आधारित हैं। यह कथा परम्परा केवल मनोरंजन ही नहीं करती है, बल्कि यह तत्कालीन और भावी पीढ़ियों के बीच सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों के सेतु का निर्माण करती है। इसके साथ-ही-साथ यह ईमानदारी, करुणा और ज्ञान के मूल्यों को बनाए रखने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देती है।

मनुष्य ने जिस क्षण इस धरती पर पहली बार पाँव रखा होगा, कदाचित् उसी समय से कहानी का प्रचलन भी हमारे यहाँ हुआ होगा। ऋग्वेद विश्व-साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ है, जिसकी रचना ईसा से कुछ हजार वर्ष पहले ही हो चुकी थी। ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर तत्कालीन समाज में कही जाने वाली कथाएँ या किस्सागोई की लोकप्रियता और एक प्रचलित विधा होने के प्रमाण मिलते हैं।

प्रस्तुत शोध आलेख में दर्शाया गया है कि शिव नारायण सिंह की बोधकथाएँ भारतीय कथा-परम्परा की जड़ों को मजबूती प्रदान कर रही हैं। इनकी किस्सागोई वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल के किस्से धरातल पर मानवीय संवेदना, नैतिकता और रचनात्मकता को आत्मसात् करती हुई दिखाई देती है।

बीज–शब्द– ऋग्वेद, महाभारत, रामायण, पुराण, हस्तान्तरित, कथा- साहित्य, लोकगाथाएँ, विश्व साहित्य, सार्वभौमिक नैतिकता, अन्तर्निहित

शोध आलेख– बोधकथाएँ सामाजिक- नैतिक दक्षताओं, जैसे परिप्रेक्ष्य- ग्रहण, सहानुभूति और प्रासंगिक नैतिक निर्णयों को विकसित करने के लिए एक विश्वासात्मक सन्दर्भ प्रस्तुत करती हैं। ये कथाएँ एक प्रकार के अनुकरण को निर्मित करती हैं, जो बच्चों और पाठकों को काल्पनिक पात्रों से जुड़ने और उनके दृष्टिकोण को जीवन्त आत्मीयता के साथ समझने को सक्षम बनाती हैं।

शिव नारायण सिंह जी ने अपनी बोधकथाओं के माध्यम से बच्चों में सार्वभौमिक नैतिकता का विकास किया है, जिससे आज के समाज में गिरते मूल्यों के नकारात्मक प्रभावों को कम किया जा सके। उनमें अन्तर्निहित सकारात्मक दृष्टिकोण की मान्यताओं को पहचान सकें।

डॉ. जगदीश जैन लोककथाओं पर काम करने वाले देश के अधिकारी विद्वान एवं इतिहासविद रहे हैं। लोककथाओं पर उनकी दो संपादित पुस्तक बहुत लोकप्रिय रही हैं – एक हज़ार वर्ष पुरानी बोधकथाएँ' और दूसरा, 'प्राचीन भारत की श्रेष्ठ बोधकथाएँ'। 'दो हज़ार वर्ष पुरानी बोधकथाएँ' पुस्तक की महत्ता का अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि उसकी भूमिका हिन्दी के अत्यन्त सम्मानित इतिहासकार एवं कथाकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखी है। इस पुस्तक के फ्लैप पर पुस्तक के बारे में लिखा गया है, "प्राचीन भारतीय साहित्य लोककथाओं का अक्षय भण्डार है। कथा के माध्यम से जीवन और जगत की सम्पूर्ण जानकारी तथा मानव-

जीवन को उन्नत बनाने की शिक्षा प्राचीन साहित्य की विशेषता रही है। ये इतनी सामर्थ, ऐसी मर्म-छूती, सहज और स्वाभाविक कथा-कहानियाँ हैं कि युगों तक मानव को इनसे प्रेरणा मिलती रही है और आज भी वे अपने सामाजिक सन्दर्भों में उतनी ही सक्षम हैं।"1

उक्त कथन के आलोक में कहना ज़रूरी है कि लोककथाओं की शुरुआत ही हमारे ज्ञान-विज्ञान को सहजतापूर्वक लोक तक पहुँचाने के उद्देश्य से हुई थी। लोक दरअसल जीवन है। वह नदी के प्रवाह के समान होता है, निरन्तर बहता रहता है, अपने आप को हमेशा बदलता रहता है, नवाचारी बनाता रहता है। इसलिए शास्त्र भी लोक को प्रमाण के रूप में इस्तेमाल करता रहता है। लोक और शास्त्र हमेशा एक-दूसरे से लेते-देते रहते हैं।

जब हमारे शास्त्र के रचयिताओं को यह महसूस हुआ कि हमारा लिखा तो थोड़े से लोगों तक सिमटकर रह जाएगा तब शास्त्रों के ज्ञान को उन्होंने रस में बदलने के बारे में सोचा। सोचने के इसी क्रम में जो रास्ता निकलकर आया, वह ज्ञान को लोक तक पहुँचाने की आख्यान शैली थी और वह आख्यान शैली इन्हीं लोक कथाओं के माध्यम से सामने आयीं। प्राचीन काल की जिन लोककथाओं की बात उपर्युक्त पंक्तियों में डॉ. जैन ने की है, उसकी शुरुआत इस तरह से होती है।

स्पष्ट है कि बोधकथा भारत की प्राचीनतम शिक्षण पद्धतियों में से एक है। इन कथाओं के द्वारा प्राचीन काल से इस देश में नीति, भक्ति, धर्म और ज्ञान-विज्ञान को प्रचारित-प्रसारित करते हुए मनुष्य के चरित्र का निर्माण किया जाता रहा है। लोक से जुड़े होने के कारण यह लोकप्रिय और सहज ग्राह्य रही है, लेकिन आधुनिक काल में ज्यों-ज्यों हम अधिक वैज्ञानिक होते गए, त्यों-त्यों बोधकथा जैसी चिरन्तन भारतीय चिन्तन और शिक्षण पद्धतियों से दूर होते गए। नतीजा हुआ कि हम बौद्धिक तो होते गए, पर मनुष्यता बहुत पीछे छूटती गयी। बोधकथा जैसी शिक्षण पद्धतियों के माध्यम से हृदय और बुद्धि का जो समन्वित विकास हो रहा था, वह अवरुद्ध होने लगा। हमारी ऐसी शिक्षण पद्धतियों पर चिन्ता व्यक्त करते हुए राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने अपनी अत्यन्त लोकप्रिय कृति 'कुरुक्षेत्र' में उचित ही लिखा था–

किन्तु है बढ़ता गया मष्तिष्क ही निःशेष
छूट कर पीछे गया है रह, हृदय का देश
नर मनाता नित्य नूतन बुद्धि का त्यौहार
प्राण में करते दुःखी हो देवता चीत्कार।"2

यह सच है कि आधुनिक विज्ञान की शिक्षा ने हमारा अकल्पनीय विकास किया है और अपने इस बौद्धिक विकास पर हम इतराते भी रहते हैं; लेकिन इसने हमारी मनुष्यता ही हमसे छीन लिया है, इससे कोई इंकार भी नहीं कर सकता। इसलिए लगातार प्रगति की सीढ़ियों को चढ़ने के बाद भी हम दुःखी और संतप्त हैं। सब कुछ हासिल करने के बावजूद हमें लगता है कि हमारे पास कुछ नहीं है। इसने हमें मनुष्य से मशीन में तब्दील कर दिया है जिससे हमारी संवेदनाएँ मर गयी हैं। फलस्वरूप अब दूसरे के दुःख में दुःखी और दूसरे के सुख में सुखी होना हम भूल गए हैं। तभी जयशंकर प्रसाद ने यह कामना की थी-

औरों को हँसता देखो मनु
हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सब को सुखी बनाओ।।"3

आधुनिक विज्ञान के युग में हमने तरक्की चाहे जितनी कर ली हो, दूसरों के सुख में सुखी रहने की जो हमारी पुरानी परम्परा रही है, वह हमसे बहुत दूर चली गई है। दूसरों के सुख में अब हम ईर्ष्यालु और दुःख में खुशियाँ मनाने जैसी दुःवृत्तियाँ हमारे भीतर विकसित होने लगी। पूरी पृथ्वी को अपना कुटुम्ब मानने वाला देश अब इतना संकुचित और स्वार्थी होता जा रहा है कि अपने परिवार के सदस्यों में भी केवल पति-पत्नी और संतान तक सिमटकर रह गया है। समय-समय पर हम इसके दुष्परिणामों से अवगत भी होते रहते हैं। ऐसे में शिव नारायण सिंह जैसे किस्सागो हमारे भीतर उम्मीद जगाते हैं।

ऐसी ही स्थिति में हमें अपनी इन पुरानी शिक्षण पद्धतियों की आवश्कता बड़ी शिद्दत से महसूस होती है। इसी शिद्दत का सुखद परिणाम है "विद्यार्थियों से..." ग्रन्थमाला और इसके सपने को साकार करने का उपक्रम आज से लगभग तीस वर्ष पूर्व देवरिया स्थित प्रेस्टिज इण्टर कॉलेज के प्रांगण में इसके कथाकार

शिव नारायण सिंह ने की थी। शिव नारायण जी ने जब इसे शुरू किया था तो निश्चय ही इसके मूल में हमारी इस पुरातन और महत्त्वपूर्ण शिक्षण पद्धति की ओर लौटकर इसे आधुनिक और विज्ञान सम्मत बनाना रहा होगा।

इस संकल्प को पूरा करने में लगभग तीस साल से भी अधिक समय से सुप्रसिद्ध किस्सागो शिव नारायण सिंह लगे हुए हैं। बोधकथा को जन-जन तक फ़िर से पहुँचाना और समाज में उसकी पुनर्स्थापना उनके जीवन का लक्ष्य है और उसके लिए सबसे पहला माध्यम जिसे वह बनाते हैं, वे उनके विद्यार्थी हैं। इससे उनकी संकल्पना पूर्णतः ज़ाहिर हो जाती है कि यदि हम देश बदलना चाहते हैं तो इसकी शुरुआत हमें देश के युवाओं से करना चाहिए जो किसी भी देश के भविष्य होते हैं। आज हम जिस आधुनिक और वैज्ञानिक युग में जी रहे हैं, उस युग के हर युवा के चित्त और चरित्र में इन बोधकथाओं के माध्यम से मूल्यों का निर्माण करना उनका सपना है।

कथाएँ मनुष्य के साहित्यिक अभिव्यक्ति की अत्यन्त प्राचीन विधाओं में से एक है। कविता में जो स्थान गीत का है, लगभग वही स्थान गद्य में कथाओं का है। बचपन में हमारा जिस साहित्यिक विधा से सबसे पहले परिचय होता है, उनमें गीत और कथाओं का स्थान सर्वप्रमुख है। हमारे भीतर नैतिक मूल्यों को भरने के लिए जीवन की शुरुआत से ही 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश' और दादी- नानी की कहानियाँ हमें सुनाई जाती हैं। जीवन के कठिन क्षणों में ये कहानियाँ हमारी सहायक होती हैं। उचित-अनुचित, सही-गलत और ईमानदार बनने में ये हमारे सहायक सिद्ध होते हैं।

शिव नारायण सिंह जी हिन्दी के महत्त्वपूर्ण कवि-कथाकार और शिक्षाविद हैं। अपने विद्यालय के विद्यार्थियों में नैतिक मूल्य विकसित करने के लिए एक अनोखी पहल करते हुए वे रोज एक प्रेरक कहानी सुनाते आ रहे हैं। ''विद्यार्थियों से...' ग्रन्थमाला के खण्ड-पर-खण्ड उन्हीं बोधकथाओं का संकलन है। उन्होंने अपने दैनिक जीवन की घटनाओं और महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का सहारा लेकर विद्यार्थियों के भीतर सकारात्मक ऊर्जा के संचार की महत्त्वपूर्ण और अनोखी पहल इसके माध्यम से की है। इन बोधकथाओं के माध्यम से उनके विद्यार्थी समय, परिश्रम, ईमानदारी, शिष्टाचार, बुद्धि, लोक व्यवहार आदि का महत्त्व समझने में सफल हुए होंगे, यह तो निर्विवाद सत्य है ; साथ ही पुस्तक के पाठक भी इससे पूरी तरह लाभान्वित हो रहे होंगे, इसका पूर्ण विश्वास है।

आज हम जिस समय में जी रहे हैं, उसमें सफलता का एक मात्र पैमाना किसी भी परीक्षा में सफल-असफल होना रह गया है। ऐसे में हम मनुष्य से लगातार मशीन में तब्दील होते चले जा रहे हैं। सफल होने की चाहत में हम लगातार असामाजिक होते चले जा रहे हैं तथा सफलता और सार्थकता के अन्तर को भूलते जा रहे हैं। हमारी शिक्षा व्यवस्था भी प्रायः ऐसी ही है। इससे हमारे भीतर की सारी संवेदनाएँ मरती चली जा रही हैं। ऐसे में शिव नारायण जी जैसे कवि-कथाकार और शिक्षाविद ने हमारे भीतर उम्मीद की लौ जगाई है। जाहिर है, उनसे हमें बड़ी उम्मीदें हैं। उन्हीं उम्मीदों का सुफल है ये बोधकथाएँ, जिसे बड़ी शिद्दत से उन्होंने सृजित किया है।

शिव नारायण सिंह का कथा साहित्य भारतीय कथा-परम्परा की उस सुदीर्घ धारा का सजीव रूप है जो कथा के माध्यम से प्रबोधन की प्राचीन परम्परा को जीवंत रखते हुए आधुनिक विद्यार्थी-मन को सम्बोधित करता है। आज की पीढ़ी हैरी पॉटर जैसे जादुई संसार से सम्मोहित होकर अपनी मूल कथा-परम्परा को भूलती जा रही है, लेकिन शिव नारायण सिंह अपनी बोधकथाओं में इसी परम्परा को पुनर्जीवित करते हैं। उनकी पुस्तक '''विद्यार्थियों से...' ग्रन्थमाला इस कमी को पूरा करने का एक सशक्त प्रयास है। इसमें उन्होंने सूझ-बूझ के उस जीवन-मूल्य को केंद्र में रखा है जो किसी पाठ्यक्रम या टॉपिक में नहीं पढ़ाया जाता, बल्कि जीवन के अनुभव से स्वयं सीखना पड़ता है। जैसा कि नामवर सिंह कहते हैं — “खूब पढ़ो, लेकिन किताबें नहीं, जीवन।” इस संकलन में संकलित कई ऐसी बोधकथाएँ इसके प्रमाण हैं। उदाहरण के तौर पर 'कल कभी नहीं आता', 'मेरा क्या बिगड़ता है', 'सहयोग', 'उपयोगिता' आदि बोधकथाओं को रख सकते हैं। इसमें कई ऐसी बोधकथाएँ हैं जो लोक से शुरू होकर विज्ञान जैसे दुरूह विषय को भी सहजता से विद्यार्थियों को बोधगम्य बनाती हैं। उदाहरण के लिए 'दर्पण' कहानी को लिया जा सकता। पश्चिम के देश 'खेल-खेल में शिक्षा' का जो नारा देते हैं और जिसे आजकल भारत में भी ख़ूब प्रचारित-प्रसारित किया जा

रहा है, उसका बहुत ही उपयुक्त उदाहरण यह बोधकथा है।

इस संकलन में एक अनूठी बोधकथा है 'फ़र्क' शीर्षक से। जीवन में कई बार हमारे सामने ऐसा दृश्य आता है जब किसी काम को करके हमारे ऊपर कोई फ़र्क नहीं पड़ता, लेकिन हम जिसके लिए कर रहे होते हैं, उस पर बहुत फ़र्क पड़ता है। इसलिए काम को करने के नज़रिए में बदलाव की माँग यह बोधकथा करती है। इस बोधकथा के माध्यम से बहुत बड़ा सन्देश देते हैं जब वह विद्यार्थियों को समझाते हुए कहते हैं कि एक आदमी समुद्र के किनारे पड़े बहुत सारी मछलियों में से कुछ को उठाकर समुद्र में फेंक रहा होता है।

उनके ही शब्दों में, "एक दूसरा आदमी जो कुछ दूरी पर खड़ा होकर यह सब देख रहा था, कुछ समझ नहीं पाता। वह पास आता है और उससे पूछता है- तुम क्यों कर रहे हो? तुम्हारे ऐसा करने से क्या फ़र्क पड़ने वाला है? इतना बड़ा समुद्र है, जाने कितनी लम्बाई है इसके तट की, हजारों-हज़ार मछलियाँ इसी तरह लहरों के साथ आती हैं, किनारे पर रह जाती हैं और धूप में मर जाती हैं। तुम्हारे इन दो-चार मछलियों को उठाकर फेंक देने से क्या फ़र्क पड़ने वाला है।

फेंकने वाला कहता है- बात सही है। लेकिन जिस मछली को मैं फेंक रहा हूँ, उसे तो फ़र्क पड़ता है, उसके जीवन की रक्षा तो हो रही है।"4

यहाँ आकर बोधकथा बहुत बड़ी हो जाती है और विद्यार्थियों सह पाठकों में यह सन्देश देने में सफल हो जाती है कि हमें किसी काम को छोटा समझकर, यह सोचकर छोड़ देने से कि मेरे अकेले करने से क्या होगा, पूरी दुनिया तो हमारे जैसा नहीं सोचती, उचित नहीं है। जीवन की हर शुरुआत हमें स्वयं से करना चाहिए चाहे वह छोटा हो या बड़ा। आख़िर बूँद-बूँद से ही तो घड़ा भरता है। गाँधी भी कहते थे कि हम जिसे करना चाहते हैं, जिसे दूसरों के आचरण में देखना चाहते हैं; उसे घटित होते हुए देखने के लिए उसकी शुरुआत हमें स्वयं से करनी चाहिए। कई बार इसका परिणाम हमें उस वक्त समझ में नहीं आता, लेकिन हो रहा होता है और कालान्तर में वह विशाल रूप लेकर हमारे सामने उपस्थित होता है।

ठीक वही बात इस बोधकथा के अन्त में विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए वह कहते हैं, "प्रिय विद्यार्थियों, कहना ही होगा, जो सीधे प्रभावित होता है वह इस दर्द को, कष्ट को, प्रभाव को समझ पाता है। जो प्रभावित नहीं है वह तो कुछ भी कहकर निकल सकता है। एक बूँद पानी, एक छोटा-सा हवा का झोंका, एक छोटा-सा बादल का टुकड़ा, हरियाली का छोटा-सा हिस्सा, एक छोटी-सी चिंगारी, एक छोटा-सा घास का टुकड़ा जिसे आप तृण कहते हैं जिससे चिड़िया अपना घोसला तैयार कर लेती है, ये चीजें भले आपको छोटी लगती हों पर ये चीजें फ़र्क डालती हैं।"5

अन्त में इसे विद्यार्थियों की परीक्षा से जोड़कर यह कहना बहुत संतोषजनक प्रतिफल माना जाएगा कि "इस फ़र्क को सोचकर, इस फ़र्क को समझकर अगर आप ऐसी कोशिश करेंगे कि अपने समक्ष आया एक अवसर भी न चूके तो निश्चित रूप से कल आप शीर्ष पर होंगे, आप अपने उद्देश्य पर होंगे, निश्चित ही आपको आपका लक्ष्य मिलेगा।"6

अधिकार और कर्त्तव्य हमारे जीवन में बहुताधिक सुने जाने वाले शब्द हैं। हम अपने अधिकारों को लेकर तो बहुधा सजग रहते हैं लेकिन, कर्त्तव्य पर हमारा ध्यान नहीं होता। शिव नारायण जी की इच्छा है कि उनके विद्यार्थी कोरे अधिकार की बात करने वाले न हों। वे अपने कर्त्तव्यों को भी ठीक से समझें और अपने जीवन में उनका अनुपालन करें। इस भाव को बोधकथा के माध्यम से बहुत सहज रूप में अपने विद्यार्थियों तक प्रेषित कर लेते हैं। उनकी इसी भाव की बोधकथा है- 'अधिकार और कर्त्तव्य'।

बोधकथा के अन्त में कितना सही-सही वह विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं, "एक अच्छा विद्यार्थी बनने के लिए आपको अपने कर्त्तव्य का बोध होना चाहिए और अगर आपको अपने कर्त्तव्य का बोध हो जाएगा तो अधिकार तो आपको मिला हुआ ही है। आप जैसे चाहेंगे, जिस रूप में चाहेंगे, आपको अधिकार का लाभ देने के लिए हमलोग यहाँ हैं ही। यही तो हमलोगों का काम है कि आपको कर्त्तव्य का बोध कराया जाए, आपको कर्त्तव्य के रास्ते पर लाया जाए और आपके अधिकार आपको सुपुर्द कर दिये जायें।"7

कहना न होगा कि आज की हमारी शिक्षण पद्धति विद्यार्थियों में उनके अधिकारों को जागृत तो

कर रही है पर उनके कर्त्तव्यों की सीख देने में असफल है। तभी तो देश के बड़े-बड़े संस्थानों से पढ़कर निकलने वाले विद्यार्थी अपने लक्ष्य को पाने में तो सफल हो जा रहे हैं लेकिन जीवन को सार्थक नहीं बना पाते। बहुत दुःख के साथ कहना पड़ेगा कि हमारे देश के कई बड़े संस्थान (कथित तौर पर) भ्रष्ट ब्यूरोक्रेट पैदा कर रहे हैं। विद्यालयी और विश्वविद्यालयी परीक्षा में वे अव्वल तो हो रहे हैं, पर जीवन की परीक्षा में, व्यावहारिक परीक्षा में फेल हो जा रहे हैं।

अतः ज़रूरत है अधिकारों के साथ-कर्त्तव्यों के पाठ का और यह बोधकथा उनके भीतर यह भाव भरने में पूरी तरह से सफल है। शिव नारायण जी की ऐसी बोधकथाएँ विद्यार्थियों के भीतर बुद्धिमता, दक्षता, योग्यता, कर्मठता, लगन आदि का ही भाव केवल नहीं भरतीं, बल्कि उनके भीतर कर्त्तव्यबोध का भाव भी विकसित करती हैं। बोधकथा के पात्र जापानी अधिकारी की चर्चा करते हुए बहुत उचित कहते हैं कि "मेरा मानना है कि जिस दिन वैसी सोच आपकी भी हो जाएगी, उसी दिन आप इस राष्ट्र के कर्णधार बनने का गौरव प्राप्त कर सकेंगे।"8

'बाणभट्ट की आत्मकथा' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की सर्वोत्कृष्ट कृति मानी जाती है, बल्कि यूँ कहिये कि हिन्दी की सर्वोत्कृष्ट कृतियों में से एक है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसकी रचना उन्नीस सौ छियालिस में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की पुण्यभूमि शान्तिनिकेतन, विश्वभारती में रहते हुए की थी। इसमें उन्होंने आज़ाद हिन्दुस्तान के भारतीयों के चरित्रों में आ रहे पतन और उनके कारण की बड़ी सटीक पहचान की है। बड़े सत्य और छोटे सत्य के बहाने हमारी कायरता पर प्रहार किया है जिसमें हम कल के नाम पर आज की समस्याओं के निदान का भाव रख छोड़ते हैं।

हमारे शरीर में रोग आज लक्षित हुआ है और हम कहते हैं कि इसका इलाज कल कर लेंगे। जाहिर है जब परिस्थितियाँ अपना विकराल रूप धरती हैं तो हमारे हाथ-पाँव फूलने लगते हैं। निउनिया भट्ट जैसे समर्थ और शक्तिशाली पात्र के सामने सहज भाव से देश में हो रहे भेद-भाव को रेखांकित करती है तो आचार्य द्विवेदी की कलम भट्ट के माध्यम से जो लिखती है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। वह लिखते हैं, "उस दिन मैंने पहली बार अनुभव किया कि मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धों की जड़ में कहीं बहुत बड़ा दोष रह गया है।"9

कुछ इसी तरह का भाव बोध होता है जब हम शिव नारायण जी की बोधकथा 'कर्त्तव्यबोध' के इस अंश का पाठ करते हैं, "हम कभी विश्व गुरु थे लेकिन आज ज़रूर हम स्लैक हुए हैं, ज़रूर हम कुछ पीछे हुए हैं। मुझे इसका कारण सिर्फ़ यही समझ में आता है कि कहीं-न-कहीं हमारे कर्त्तव्यबोध में कोई कमी आयी है और जिस क्षण हम इसे महसूस कर लेंगे उस क्षण फ़िर वही हो जायेंगे जो कभी थे, जिस नाम से प्रसिद्ध थे, जो हमारी प्रसिद्धि थी।"10

शिव नारायण सिंह का कथा-शिल्प सबसे अनूठा और प्रभावशाली है। वे बोधकथा को एक तरफा उपदेश नहीं बनाते, बल्कि उसे संवाद का रूप देते हैं। पाठक या श्रोता को लगता है कि वह स्वयं बच्चों के साथ उस बातचीत में शामिल है। नाई और शेर की बोधकथा 'दर्पण' इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। नाई शेर को छकाने के लिए दर्पण निकालता है, लेकिन शिव नारायण सिंह सीधे यह नहीं बताते। वे पूछते हैं— "नाई अपना थैला खोलता है, उसमें से क्या निकलता है ?"11

जब बच्चे चुप रह जाते हैं तो फिर से पूछते हैं— नहीं पता तुम्हें ? थैले में से क्या निकलता है ? बच्चे अपनी कल्पना शक्ति से तरह-तरह के उत्तर देते हैं— कोई जादू का कटोरा कहता है। तब उनकी कल्पना को प्रोत्साहित करते हुए वे सही उत्तर निकलवाते हैं— "हाँ, देखो उधर से कोई कुछ कह रहा है हाँ, उसमें से दर्पण निकालता है वह।"12 इस प्रकार वे पाठक को निष्क्रिय श्रोता नहीं, सक्रिय सहभागी बनाते हैं।

कथा का यह शिल्प विज्ञान, दर्शन और नीति-शिक्षा को सहजता से पिरो देता है। नाई के थैले से निकले दर्पण के माध्यम से वे समतल दर्पण, अवतल दर्पण और उत्तल दर्पण की चर्चा करते हैं। उनके दैनिक उपयोग—जुल्फें सँवारना, दाढ़ी बनाना, स्कूटी-गाड़ी चलाना, डॉक्टरों द्वारा प्रयोग—सबको लोककथा के प्रवाह में बुन दिया जाता है।

विज्ञान की यह चर्चा कहीं भी बोझिल नहीं लगती क्योंकि वे कथा का फोकस कभी नहीं भूलते। भौतिकी की व्याख्या के बाद वे तुरन्त पूछते हैं— "नाई ने जिस दर्पण का प्रयोग किया होगा, वह कौन सा दर्पण था ?"13 इस एक प्रश्न से शिल्प टूटने से बच जाता है

और श्रोता और पाठक फिर कथा-प्रवाह में लौट आता है।

लेकिन शिव नारायण सिंह की कथा-यात्रा विज्ञान तक सीमित नहीं रहती। दर्पण के बाहरी उपयोग से वे आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाते हैं। वे विद्यार्थियों से कहते हैं—"मैं जानता हूँ तुम अधूरे होने के लिए नहीं हो, तुम्हारे अन्दर जो छिपा है, जो तुम्हारी सम्भावना है वह क्षण कभी भी आ सकता है।"14

दर्पण के माध्यम से वे विद्यार्थियों को सिखाते हैं कि वे स्वयं अद्वितीय हैं, अपनी सम्भावनाओं से परिचित हों और आत्म-चेतना को विस्तार दें। पूरी पुस्तक 'प्रिय विद्यार्थियो' सम्बोधन से शुरू होती है और बीच-बीच में बार-बार इसी सम्बोधन से विद्यार्थियों को केंद्र में रखती है। कबीर के 'सुनो भाई साधो' की तरह यह सम्बोधन कथा को जीवन्त और व्यक्तिगत बना देता है।

कथा-प्रवाह लोककथा से ज्ञान-खण्ड होते हुए दर्शन के आकाश से गुजरकर नीति-लोक में आकर ठहरता है। वे पारम्परिक शैली में उदाहरण और कथन के युग्म से नीतिपरक सुभाषित रचते हैं। 'दर्पण' रचना के अन्त में वे कहते हैं— "यदि तुम किसी पर कीचड़ फेंकना चाहते हो, तो कीचड़ उस पर पड़े या न पड़े, तुम्हारा हाथ गन्दा हो ही जाएगा। ठीक उसी प्रकार, अगर गुलाब का अर्क फेंकना चाहते हो, तो उसके छींटे उस पर पड़े या न पड़े, तुम्हारा हाथ सुगन्धित हुए बिना नहीं रह सकता।"15 तुलसी, रहीम और संस्कृत सुभाषितों की परम्परा को वे आधुनिक सन्दर्भ में जीवन्त रखते हैं।

'गुरु कुम्हार सिस कुम्भ है' समीक्षात्मक लेख में डॉ. जय प्रकाश धूमकेतु कहते हैं– "श्री सिंह की प्रयोग-धर्मिता विज्ञान की प्रयोगशाला से निकलकर शिक्षा व समाज की प्रयोगशाला में अपनी वैज्ञानिक दृष्टि संपन्नता का परिचय देने को तत्पर है। 'गुरु कुम्हार सिस कुम्भ है' की उक्ति को सार्थक बनाने की संकल्पबद्धता शिव नारायण सिंह की नियति बन चुकी है। वह संस्था और उस संस्था के सभी सदस्य सौभाग्यशाली हैं, जिस संस्था के मुखिया शिव नारायण सिंह हैं। मनसा, वाचा, कर्मणा से समेकित।

प्रतिदिन शिक्षा ग्रहण करने के लिए जानेवाले विद्यार्थी प्रार्थना- सभा के समय जीवन मूल्यों को सहेजने और अपने को संस्कारित करने के साथ 'ज्ञान कऽजोति जरै दिन राती' की संकल्पबद्धता के साथ स्वस्थ वातावरण में ज्ञान अर्जित करते हैं। परिसर के वातावरण का सृजन शिव नारायण सिंह के जीवन की सार्थकता है। शायद बेहतर मनुष्य और बेहतर दुनिया का सृजन उनका सपना है।"16

शिव नारायण सिंह का अंतिम लक्ष्य कल्याणकारी है। वे जैसे ही 'शिवोऽहम्— अर्थात् मैं कल्याणकारी हूँ कहते तब तक उनके विद्यार्थी तेज स्वर में इसकी पुनरावृत्ति कर उस दिन की बोधकथा का समापन करते हैं। विद्यार्थियों को वे सृष्टि का विलक्षण और अद्वितीय अंश मानते हैं। उनकी कथा-रचना का उद्देश्य विद्यार्थियों का रूपान्तरण है ताकि वे बड़े उद्देश्य बड़ी सोच के साथ समाज और सृष्टि के कल्याण—की ओर अग्रसर हों। वे जानते हैं कि मानव-सभ्यता ने अपार ज्ञान-राशि एकत्र की है। उसमें से मधु एकत्र कर, अपनी कल्याणकारी दृष्टि से अनूठा रूप देकर प्रस्तुत करना ही उनका कार्य है। इसीलिए अपनी प्रत्येक बोधकथा के अन्त में वे नम्रतापूर्वक 'धन्यवाद' कहना नहीं भूलते।

किसी भी मनुष्य के सुखी जीवन के लिए यह ज़रूरी है कि वह जीवन में लोक- व्यवहार, आत्मविश्वास, दृढ़ संकल्प, संपन्नता, मित्रता, बुद्धि आदि सद्गुणों का सही प्रयोग करे। 'विद्यार्थियों से...' ग्रन्थमाला के सृजनकर्त्ता ने इस कौशल को बड़ी कुशलता से इसमें उकेरा है। आशा है कि यह 'विद्यार्थियों से...' ग्रन्थमाला आने वाले दिनों में हिन्दी समाज के लिए आधुनिक पंचतंत्र सिद्ध होगी।

निष्कर्ष– निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शिव नारायण सिंह का कथा साहित्य केवल बोधकथाएँ नहीं, बल्कि एक सम्पूर्ण प्रबोधन-यात्रा है। लोककथा की सरलता, विज्ञान की स्पष्टता, दर्शन की गहराई और नीति की प्रासंगिकता को एक सूत्र में पिरोकर उन्होंने विद्यार्थी-मन को आकर्षित करने का दुर्लभ कार्य किया है। उनकी बोधकथाएँ श्रोता और पाठक को न केवल मनोरंजन देती हैं, बल्कि उसे आत्म-चिन्तन, आत्म-विश्वास और कल्याण की दिशा में प्रेरित करती हैं। आज के समय में जब जादुई बोधकथाएँ विदेशी स्रोतों से आ रही हैं, तब शिव नारायण सिंह की बोधकथाएँ भारतीय कथा-परम्परा की जड़ों को मजबूत करती हुई भविष्य के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

सन्दर्भ सूची–

1. डॉ. जगदीशचंद्र जैन, दो हज़ार वर्ष पुरानी बोधकथाएँ, वाणी प्रकाशन ग्रुप, नई दिल्ली, पेपरबैक ग्यारहवाँ संस्करण- 2024, पुस्तक के फ्लैप से
2. रामधारी सिंह दिनकर, कुरुक्षेत्र, षष्ठम् सर्ग, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली,सन् 1975, पृष्ठ संख्या - 82
3. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, कर्म सर्ग, हिन्द पॉकेट बुक्स लिमिटेड, दिल्ली, संस्करण 1988, पृष्ठ संख्या - 63
4. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से...', खण्ड 02, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या – 28 – 29
5. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से...', खण्ड 02, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या – 30
6. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से...', खण्ड 02, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या – 30
7. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से...', खण्ड 02, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या – 33
8. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से...', खण्ड 02, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या – 62
9. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–68
10. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से...', खण्ड 02, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या – 63
11. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से...', खण्ड 07, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या – 586
12. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से...', खण्ड 07, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या – 586
13. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से...', खण्ड 07, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या – 591
14. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से...', खण्ड 07, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या – 591
15. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से...', खण्ड 07, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या – 592
16. मूल्यों के निर्माण कलश', प्रभात प्रकाशन, पृष्ठ संख्या – 46